गांधी विचार में मानवीय अवधारणा

– डॉ. लहर खत्री इस्रानी
6/388, एसएफएस, अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर, मो. 8199991822

Received:February 04, 2019 Accepted: March 21, 2019

गांधी न तो कोई शास्त्रीय तत्वचिंतक थे और न किसी संसदीय दर्शनतंत्र के पुरस्कर्त्ता। मूलत: वे एक आध्यात्मिक और धार्मिक व्यक्ति थे, हाँ बाहर से वे एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक राजनीतिक कर्त्ता–पुरुष बने रहे। यूँ गाँधी के व्यक्तित्व में अन्तर और बाह्य विभक्त हैं भी नहीं। उनके लिए तो मानव जीवन एक समग्रता है, जिसे सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक बिलकुल बन्द एवं अलग अलग घरौंदों में रखकर नहीं समझा जा सकता। गांधी ने आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन, धर्म और राजनीति, अर्थतंत्र और नैतिकता में कोई आत्मविरोध नहीं पाया। उन्होंने न अर्थनीति को अस्पृश्य माना, न राजनीति को गर्हित समझा बल्कि आजीवन एक वैकल्पिक अर्थ व्यवस्था और एक नीतिमान राजनीति के प्रवर्तन का प्रयास करते रहे। उनका तो मानना था कि 'जब तक हम जनसाधारण के साथ अपने को एकात्म नहीं कर लेते तब तक धार्मिकता कोरी कल्पना है और जन समूह के साथ जुड़ने के लिए राजनीति से जुड़ना ही होगा। फिर राजनीति तो सर्प की वह कुंडली है जिसके बीच से हम निकल नहीं सकते अत: हमें तो उससे जूझना ही होगा। उसी तरह गांधी के लिए सच्चे अर्थशास्त्र का नैतिकता से कोई विरोध नहीं है। सच्चा अर्थतंत्र सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा करते हुए समाज के अंतिम व्यक्ति को ध्यान में रखकर 'सब जन हिताय सब जन सुखाय' के सिद्धान्त को चरितार्थ करता है। उसी तरह सच्ची शिक्षा, मानव के अन्तर्निहित असीम और अनन्त संभावनाओं और अच्छाइयों के विकास से जुड़ी है।

गांधी की दृष्टि में मानव केवल जैविक या आर्थिक या यांत्रिक इकाई ही नहीं बल्कि वह बहु–आयामी है। मानव एक सामाजिक जीव है जो सदा से शांति, न्याय, सामंजस्य एवं सुख की खोज में रहा है। मानव का अस्तित्व, विकास और सज़्यता, संस्कृति सब कुछ समाज पर निर्भर है। आइन्स्टीन ने स्पष्ट कहा है 'प्रत्येक दिन हजारों बार मैं स्मरण करता हुआ महसूस करता हूँ कि मेरा अन्त: और बाह्य जीवन दूसरों के श्रम पर निर्भर है। फिर भी गांधी ने व्यक्ति को परम पुरुषार्थ माना है। आखिर संस्थाएं मानव के लिए हैं, मानव संस्थाओं के लिए नहीं। मानव संस्थाओं एवं संगठनों में सबसे ऊपर है। एवं प्राचीन यूनान के दार्शनिक संभवत: इसी भावना से उत्प्रेरित होकर 'मनुष्य एवं प्रमाणम्' (Man is the measure of all things) का नारा दिया था। व्यास ने भी इसी भावना को 'न हि श्रेष्ठतरं किंचित् मानुषात्' कहकर पुष्ट किया था। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भी इसीलिए साज़्रदायिक धर्म से ऊपर उठकर 'मानव धर्म' की बात रखी थीं।

जब तक ईश्वर एवं मनुष्य का सज़्बन्ध निर्धारित नहीं हो जाता मानव का स्वरूप भी अस्पष्ट रहेगा। लेकिन प्रश्न है कि क्या मानव और ईश्वर या आत्मा और परमात्मा एक ही तत्व है जैसा अद्वैत वेदान्त ने 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर इसको प्रकट किया है। या फिर मानव और ईश्वर के बीच भेदाज़ेद का सज़्बन्ध है। यदि मानव और ईश्वर को एक तत्व मान लिया जाये तो फिर संसार की वास्तविकता आदि के प्रश्न परमार्थ एवं व्यवहार के द्वैत में उलझकर रह जायेंगे।

मानव को ईश्वरांश मान लेने से ही परिप्रेक्ष्य परिवर्तित हो जाता है। इसका अर्थ है कि मानव केवल पाशविक और शारीरिक प्रवृत्तियों का यांत्रिक संगठन ही नहीं उसका बौद्धिक एवं आध्यात्मिक पक्ष भी है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन पशु एवं मानव में समान हैं। विवेक मानव का अतिरिक्त गुण है और साथ ही वह एक सामाजिक जीव ज़ी है। लेकिन गांधी का मानना था कि मानव का शारीरिक, बौद्धिक और यहाँ तक कि सामाजिक पक्ष मनुष्य के बाह्य स्वरूप एवं उसके व्यवहारों के विश्लेषण पर आधारित हैं। उसका आन्तरिक पक्ष तो आध्यात्मिक है। मानवीय विकास की प्रक्रिया में हम स्थूल से सूक्ष्म बाह्य से अज़्यन्तर एवं भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर जाते हैं। गांधी ने गीता और रामायण का आध्यात्मिक भाष्य करते हुए आसुरी और दैवी वृत्तियों के महाभारत में अन्ततोगत्वा दैवी वृत्तियों की ही विजय दिखायी है। गांधी यथार्थवादी की भांति मानव निहित पाशविक वृत्तियों से इनकार नहीं करते लेकिन इसके आध्यात्मिक पक्ष की अवहेलना नहीं करते। असल में ईश्वर की सत्ता है तो उसी सत्ता की अभिव्यक्ति हर प्राणी को मिलनी चाहिए। इसका सरल अर्थ होता है कि मनुष्य में ईश्वर के गुणों का समावेश है यही मानव का आध्यात्मिक पक्ष जो गांधी की मानव अवधारणा का आधार तत्त्व है।

गांधीजी का मानना है कि जब मानव की आध्यात्मिक चेतना किसी कारण से सुषुप्त या शिथिल पड़ी रहती है तो वह वैसा करता है। हृदय परिवर्तन वास्तव में आध्यात्मिक जागरण ही है। इसलिए यह कहना कि गांधी का मानव दर्शन मानव स्वभाव के अशुभ पक्ष की उपेक्षा करता है, सही नहीं है। वे तो मानते हैं कि आसुरी एवं दैवी दोनों प्रकार की वृत्तियां हमारे अन्दर रहती हैं। सुमति कुमति सब के ऊर

रही। असल में मानव ईश्वर की तरह पूर्ण तो है नहीं, हाँ वह पूर्णता के विकास क्रम में है। वह विशुद्ध आत्मा नहीं है बल्कि शरीर और आत्मा का समन्वय है, इसलिए उसके अन्दर संवेग, भावावेश, आवेश एवं उद्वेग आदि का सञ्जिश्रण स्वाभाविक है। आत्मा का बंधन शरीर के कारण है और इसलिए वह दु:प्रवृत्तियों एवं भावावेशों का शिकार होता है। मुक्तावस्था में मानव आत्मा बिलकुल शुद्ध एवं निर्मल रहती है। अत: शुभत्व उसका अनिवार्य गुण है। अपूर्णता से पूर्णता की ओर सतत् बढ़ना ही मानव–जीवन का लक्ष्य है। नर से नरोत्तम होकर अंत में नारायण में आत्मसात् हो जाने की कामना ही मानव जीवन का आदर्श है। मानव भले ही अपूर्ण रहेगा लेकिन मानवता पूर्णता की ओर बढ़ती रहेगी। मानव इतिहास इस बात का साक्षी है कि सब मिला जुलाकर आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टि से वह विकासशील रहा है। बर्बरता से सज़्यता की ओर विकास ही इसका अकाट्य प्रमाण है।

एक व्यावहारिक आदर्शवादी की तरह गांधी ने मानव की दुर्बलताओं को अच्छी तरह देखा था। इसलिए उसमें आसुरी एवं दैवी दोनों प्रवृत्तियों का समावेश पाया था। आध्यात्मिक दृष्टि से मानव बिलकुल शुद्ध एवं शुभ स्वरूप है लेकिन जब तक वह शरीर से बंधा हुआ है, वह अपूर्ण, अशुद्ध एवं अशुभ रूप हैं। शुभत्व मानव की दिव्य संभावना है अत: उसकी अभिव्यक्ति में ही यथार्थ के अशुभत्व का अंत होता है। इसलिए गांधी ने केवल आत्म विश्लेषण के आधार पर मानव के अनिवार्य शुभत्व का सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया, इसके पीछे आध्यात्मिक तत्वज्ञान निहित है। इसलिए गांधी का मानव दर्शन न तो स्वप्नदर्शी आदर्शवाद है और न आत्म केन्द्रित अहंवाद बल्कि इसके पीछे अध्यात्म और यथार्थ का समन्वय है।

गाँधी ने मनुष्य की विशिष्टताओं पर ध्यान नहीं दिया। यदि ऐसा होता तो गांधी मनुष्य को परम पुरुषार्थ नहीं मानते। आहार, निद्रा, भय और मैथुन में मनुष्य पशु के समान है। विवेक उसका व्यावर्त्तक गुण है और सामाजिकता उसका स्वभाव है। लेकिन आध्यात्मिक शक्ति उसका सच्चा मापदंड है। अपनी अपनी साधना के अनुसार आध्यात्मिक अज़्युत्थान के क्रम में हर व्यक्ति का अपना स्थान होता है। इसी को जैनदर्शन में गुणस्थान भी कहते हैं। गांधी का केवल यही कहना है कि हर व्यक्ति के अन्दर ही ईश्वर तत्व विद्यमान है, जिसे आत्म तत्व भी कहा जाता है। हर मानव में देवत्व की संभावना है। वह बुद्धत्व या सिद्धत्व का अधिकारी है। इसी दृष्टि से भले ही उसका शारीरिक, बौद्धिक गुण असमान हो लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से तो सब समान हैं। जिसकी जैसी साधना होगी, उसकी ऊँचाई भी उसी के अनुरूप होगी। गांधी दर्शन कदापि भी अनन्त संभावनाओं एवं यथार्थ की दुर्बलताओं की उपेक्षा नहीं करता और इसीलिए एकादश व्रत की साधना तथा सत्याग्रह के लिए अपेक्षित शिक्षण–प्रशिक्षण पर जोर देता है। गांधी ने यह प्रमाणित कर दिया कि सत्याग्रह का नैतिक आध्यात्मिक अस्त्र केवल चुने हुए विशिष्ट पुरुषों के लिए ही नहीं बल्कि सामान्य नर नारियों के लिए भी है। असल में गांधी हर मानव के अन्दर एक ही ईश्वर तत्व को पाते थे। इसलिए वे मानव को स्वभाव से साधु समझते थे, दुष्टता स्वभाव जन्य नहीं, परिस्थिति जन्य होती है। मैत्री स्वाभाविक है, झगड़े के कारण होते हैं। अपराधी जन्मजात नहीं होते, वे समाज में बनते हैं। हम जीर्ण शीर्ण परज़राओं, परिस्थितियों एवं वातावरणों को बनाये रखते हैं और फिर मानव अस्तित्व और उसकी वैयक्तिकता को ही उजागर करते रहते हैं। ऐसी ही दारूण एवं विषम व्यवस्था में मानव चिन्ताकुल, उद्विग्न और अशांत होता है, लेकिन यह उसका तात्कालिक रूप भले हो, आन्तरिक और यथार्थ स्वरूप नहीं है। गांधी किसी आदर्श लोक में यदि उलझा रहता तो आजीवन व्यवस्था परिवर्तन के लिए दक्षिण अफ्रीका में, कभी चंपारण, खेड़ा अहमदाबाद में, कभी अस्पृश्यता के खिलाफ तो कभी साञ्प्रदायिक जहर के खिलाफ या फिर मद्यपानादि के खिलाफ संघर्ष नहीं करते। गाँधी धरती का आदमी था स्वप्नदर्शी हो ही नहीं सकता है।

गांधीजी का मत है कि बुनियादी शिक्षा की उनकी योजना व्यक्ति और समाज दोनों के विकास का माध्यम बनेगी। व्यक्तिगत दृष्टि से यह विद्यार्थी के बौद्धिक, आत्मिक और भौतिक विकास का माध्यम बनेगी। **व्यक्तिगत दृष्टि से यह विद्यार्थी के बौद्धिक, आत्मिक और भौतिक विकास का माध्यम बनेगी।** सामाजिक दृष्टि से टकरावों, तनावों और संघर्षों की संभावनाएँ कम होंगी। क्योंकि शिक्षा के माध्यम से सभी व्यक्तियों में श्रम की गरिमा की भावना व्याप्त हो जायगी और वे किसी भी व्यवसाय में लगे हुए व्यक्ति को छोटा या बड़ा समझने की प्रवृत्ति को सहज रूप से त्याग देंगे। उन्होंने कहा ''मेरी शिक्षा योजना, एक शांत सामाजिक क्रान्ति का माध्यम बनेगी। यह गाँवों और शहरों के मध्य संबंधो के एक स्वस्थ और नैतिक आधार प्रदान करेगी, और एक अधिक न्यायनिष्ठ सामाजिक व्यवस्था की नींव डालेगी, जिसमें कि सज़्पन्नों और विपन्नों के रूप में समाज का विभाजन नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपने निर्वाह के लिए न्यूनतम साधन उपलब्ध होंगे और स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस क्रान्ति को रचनात्मक माध्यम से पूरा किया जायेगा, और इसमें न तो रक्तपात की आवश्यकता होगी और न ही भारी भरकम साधनों के विनियोग की। इसके लिये भारत जैसे बड़े देश का मशीनीकरण नहीं करना पड़ेगा और न ही तकनीकी कौशल और मशीन के लिए विदेशी आयात पर निर्भर होना पड़ेगा। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि यह भारत की जनता में उस आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता को सुनिश्चित करेगी जिसके द्वारा उनका भविष्य, स्वयं उनके हाथों में रहेगा।

राजनीति और धर्म दोनों ही उनके अनुसार ऐसे मानवीय व्यवसाय थे जो एक समान प्रयोजन मानव के कल्याण के प्रति समर्पित हैं। अत: उन्होंने राजनीति और धर्म को परस्पर निर्भर और पूरक माना। उन्होंने कहा : ''धर्मविहीन राजनीति से सढ़ांध आती है, और राजनीति से पृथक् किया हुआ धर्म निरर्थक है। राजनीति का अर्थ है– जनता के कल्याण के लिये सक्रियता। कोई भी व्यक्ति जो ईश्वर की

साधना करना चाहता है, इस सत् कार्य के प्रति उदासीन कैसे रह सकता है? और क्योंकि मेरे लिये सत्य और ईश्वर एक ही हैं। अत: मेरी यह आकांक्षा रहेगी कि राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य के नियम की प्रतिष्ठा हो।''

गाँधीजी के लिए धर्म का मर्म है- मानव मात्र की सेवा के प्रति समर्पण। अत: उनका यह स्वाभाविक निष्कर्ष है कि धर्मविहीन राजनीति अनर्थकारी है, और सामाजिक व राजनीतिक सक्रियता की प्रेरणा से शून्य धर्म निरर्थक है। उनके अनुसार राजनीति, शक्ति अर्जित करने अथवा सत्ता प्राप्त करने के लिए संघर्ष नहीं है, अपितु वह तो जनता की सेवा का ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं अपने धर्म की पूर्ति करता है। उन्होंने यह स्पष्ट किया ऐसी राजनीति जो धर्म को सुरक्षित नहीं करती, निन्दनीय और घृणित है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. सत्याग्रह आश्रम का इतिहास, मोहनदास करामचंद गाँधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1948
2. गाँधीजी के रोचक संस्मरण, डॉ. कृष्णबीर सिंह, अनु प्रकाशन, 2007
3. गाँधीजी और स्वाधीनता आन्दोलन, जवाहरलाल नेहरू, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, 1973
4. सत्याग्रह आश्रम का इतिहास, मोहनदास करामचंद गाँधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1948
5. मेरे बापू, तन्मय बुखारिया, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1951
6. समाजवाद से सर्वोदय की ओर, जय प्रकाश नारायण, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद
7. गाँधी और समाजवाद, किशोरलाल मशरूवाला, मानक पब्लिकेशन्स, प्रा. लि., दिल्ली
8. डूबता संसार और गाँधी, त्रिलोकचन्द जैन, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी
9. गाँधीजी के सिद्धान्त: नई पीढ़ी की दृष्टि, गुणवंत शाह, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, 1983
10. राष्ट्रप्रिता महात्मा गाँधी, महेश शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009